P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-2* (Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारतीय इतिहास–लेखन और वार्ता–साहित्य

रजत भार्मा
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन वि"वविद्यालय,
रायसेन, म.प्र., भारत

सारांश

भारतीय इतिहास–लेखन की प्रमुख समस्या उसके अस्तित्व के नकार की है। इतिहास–बोध की स्वीकृति तथा इतिहास–लेखन की अस्वीकृति के भँवर के बीच कई दृष्टियाँ जन्म लेती है। किन दृष्टियों को स्वीकार किया जाये अथवा किन दृष्टियो को अस्वीकार यह महत्वपूर्ण बिन्दु है। प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष का विरोधाभासी है। तत्व आधारित लेखन का निर्धारण तथा लेखन की प्रवृत्ति के आधार पर विषय–वस्तु का निर्धारण वि"लेषण को सामान्य प्रक्रिया है। इसका अनुकरण भारतीय इतिहास–लेखन के अस्तित्व को स्वीकारने में कई समस्या खड़ी करता है। जिस कारण मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के वार्ता–साहित्य को लेकर विषय–निर्धारण की समस्या सामने आती है। साहित्य की वर्तमान अवधारणा तथा इतिहास के बीच वार्ता–साहित्य का निर्धारण किस ओर किया जाये यह महत्वपूर्ण समस्या है।

मुख्य शब्द : भारतीय इतिहास–लेखन, वार्ता–साहित्य, इतिहास–द"र्न, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य।

प्रस्तावना

''प्राचीन भारतीयों ने अपने अतीत का इतिहास प्रस्तुत नहीं किया, उनमें एतिहासिक विवेक था ही नहीं।''[1] मैक्डोनल्ड द्वारा कही गई यह उक्ति कई बार तरह–तरह से भारतीय एवं पा"चात्य विद्वानों द्वारा उद्धृत की जाती रही है। भारत के पास अपना इतिहास नहीं है। भारतवासी इतिहास–लेखन नहीं जानते थे। उनके पास इतिहास का कोई स्वरूप नहीं था– आदि भारत के संदर्भ में प्रयुक्त सामान्यीकृत कथन है। वहीं दूसरी ओर ए.एल.बा"ान कहते है –''भारत के पास इतिहास की कोई अवधारणा थी या नहीं, लेकिन इनके पास अतीत की एक जीवंत भावना जरूर थी।''[2] उपर्युक्त कथन के दो अ"ा है। पहला संदेहात्मक है तथा दूसरा नि"चयात्मक। नि"चयात्मक कथन मूलतः इतिहास–बोध से संबंधित है। ए.एल.बा"ाम द्वारा इतिहास–बोध की स्वीकृति भारतीय इतिहास का दूसरा पक्ष सामने लाती है। इस प्रकार भारतीय इतिहास को लेकर दो पक्ष स्पष्ट रूप से नजर आते है। पहला, जो इतिहास के अस्तित्व को स्वीकारता ही नहीं करता और दूसरा, इतिहास के अवधारणात्मक अस्तित्व को अस्वीकारते हुए भी इतिहास–बोध के प्र"न को जीवित रखता है। मैक्डोनल्ड का कथन मूलतःनस्ल केंद्रित उपनिवे"ावादी दृष्टिसे ग्रसित दिखाई पड़ता है,जिसे भारतीय इतिहासकार संकेत करते है। वह भारतीय वाङ्ग्मय में प्रस्तुत इतिहास–चिंतन को साम्प्रदायिक तथा काल्पनिक कहकर अध्ययन के लिए नाकाबिल मान लेते है। इस चिंतन के मूल में उपस्थित दृष्टि कोअपने निबंध में संकेत करते हुए सती"ा चन्द्र लिखते है कि –

> ''पि"चम के इतिहास लेखन पर इतिहास के जातीय केंद्रित विचार के विकास और उसके बने रहने के कई दूसरे प्रभाव भी पड़े हैं। लोगों को वि"वास था कि बुद्धिवाद, व्यक्तिवाद, कानून और स्वंत्रता का सम्मान, तटस्थ वैज्ञानिक भावना इत्यादि पि"चम के वि"ोषाधिकार थे। यह वि"वास पूरब के संबंध में इस धारणा के बनने में मददगार साबित हुआ किवह रहस्यवादी, चिंतन"ाील, धर्म का गुलाम, आध्यात्मिक, आलसी, भौतिक प्रोत्साहनों आदि के प्रति लापरवाह है। पूरब और पि"चम की परस्पर विरोधी प्रकृति के इस विचार ने दोनों पर लागू होने वाली समान कोटियों अथवा प्रणालियों को विकसित अथवा लागू करने के किसी भी प्रयास को बाधित किया।''[3]

यह दृष्टि भारतीय प्रवृत्तियों को विदे"ाी दृष्टि से देखने पर जोर देती है। इस प्रकार भारत की मूल चेतना अक्षम दिखाई पड़ती है। भारतीय इतिहास–लेखन इसी दृष्टिकोण का f"ाकार है। इतिहास–बोध की स्वीकृति परन्तु इतिहास की अवधारणा एवं इतिहास–लेखन की अस्वीकृति– भारतीय इतिहास के

संदर्भ में तटस्थ–चिंतन की कमी को दिखाता है। इतिहास–लेखन मूलतः इतिहास के बाह्य ढ़ाँचे की ओर तथा इतिहास–बोध उसके आत्म से सरोकार रखता है। भारतीय इतिहास के अध्ययन के बिन्दु को समझने के लिए आत्मपक्ष का अध्ययन आव"यक है।

इतिहास–बोध तथा इतिहास–लेखन का द्वन्द्व भारतीय इतिहास का प्रथम विवादास्पद प्र"न है। जिसके साथ कई ओर प्र"न खड़े होते है। भारत में इतिहास–बोध का होना और इतिहास–लेखन का न होना स्वयं म एक विरोधाभास है। इस विरोधाभास के साथ कई ओर प्र"न भी खड़े होते है। भारतीय इतिहास–लेखन की अनुपस्थिति का निर्णय किन कसौटियों परकिया गया? वह कौन–से मानदण्ड है, जो इतिहास और इतिहास–लेखनके निर्धारक बने? इन मानदण्डों के निर्माण की आधार भूमि क्या रही? क्या इनसे अलग भी सामान्यीकृत नियमों का निर्धारण इतिहास के अंतर्गत किया जा सकता था? – ऐसे कई प्र"न भारतीय एवं पा"चात्य इतिहास के द्वन्द्व पर टिके है। 'इतिहास के स्वरूप' की समझ इस द्वन्द्व को समझने के लिए आव"यक है। देखा जाये तो वर्तमान चिंतन में इतिहास का स्वरूप, कसौटियाँ, अवधारणाएँ, लेखन की पद्धतियाँ आदि पा"चात्य परम्परा में विकास पाती हैं। इसी कारणकई बार तो यह भी कह दिया जाता है कि'इतिहास की अवधारणा ही पा"चमी है।' जिसके उपरांत अन्य संभावनाओं पर विचार करना भी गलत लगता है। जबकि 'इतिहास' शब्द का प्रयोग एक बड़े कालांतर के साथ वेदों में भी दिखाई पड़ता है। ऋग्वेद में प्रयुक्त इतिहास, पुराण, नारा"ंसी तथा गाथा जैसी समानार्थक शब्दावलियों का इतिहास–चिंतन में स्थान निर्धारण– अपने आप में बड़ा प्र"न है। कहा भी गया है 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'। अर्थात् वेद के अर्थ का पल्लवन इतिहास और पुराण के द्वारा करना चाहिए।[4] इस रूप में भारतीय इतिहास के स्वरूप का निर्धारण वेदों की कूँजी–निर्माण के समान है। डॉ. उमा"ंकर शर्मा लिखते है कि

> ''वैदिक युग में 'इतिहास' का प्रयोग प्राचीन तथा शा"वत व्यवस्था के अर्थ में था जैसे अथर्ववेद के विराट ब्रह्म, ज्येष्ठ ब्रह्म, इन्द्र आदि के अर्थ में। 'पुराण' का प्रयोग पुरावृत्त तथा पुरातत्व से सम्बद्ध सृष्टि, प्रलय, भूगोल, आका"ा–मण्डल आदि के विवरण के लिए किया जाता था। 'गाथा' के अन्तर्गत प्राचीन कथाएँ निहित थीं वे नतिक हों, वास्तविक हों या काल्पनिक हों।'[5]

वि"व में स्थान बनाते राष्ट्र के रूप में इन तथ्यों को सरसरी निगाहों से छोड़ना सरल नहीं है। अतःइतिहास–बोध तथा परंपरा–बोध की सं"लिष्ट अवधारणा के बीच भारतीय इतिहास–लेखन की सम्भावनाओं पर विचार करना आव"यक ह। इन शब्दावलियों के मूल में गतिमान इतिहास–बोध को देखने की क्या दृष्टि अपनाई जाये? क्या इनके आधार पर भारतीय इतिहास के स्वरूप का निर्धारण सम्भव है? यदि हाँ, तो वह किस प्रकार का स्वरूप होगा? वेद, पुराण आदि में इतिहास और पुराण नाम से संकेतिक साहित्य को इतिहास–लेखनके रूप में कहाँ तक देखा जाये? क्या भारतीय इतिहास–लेखन के साथ इतिहास–लेखन को नई सम्भावनाओं के साथ भी देखा जाना चाहिए? ऐसे कई प्र"न भारतीय इतिहास के संदर्भ में प्रासांगिक है। इन पारिभाषिक शब्दावलियों पर दृष्टिपात किया जाये तो सृष्टि, जगत से लेकर व्यक्ति तक इतिहास–बोध के विषय बन जाते है।[6] यहीं से भारतीय एवं पा"चात्य इतिहास–लेखन के बीच द्वन्द्व पनपता है। यदि इतिहास की अवधारणा भारत में नहीं थी तो इन शब्दावलियों द्वारा गृहीत अर्थ को कैसे देखा जाये?

इन अवधारणात्मक शब्दावलियों स इतर भी व"ाों की सूची देना भारतीय इतिहास–लेखन और खासतौर से लोक की एक प्रमुख वि"ोषता रही है। वर्तमान समय में भी परिवार वि"ोष की व"ाावलियाँ उनके मूल स्थानों पर प्राप्त होती है। या फिर किसी समीप के तीर्थों पर पीढ़ियों का क्रमबद्ध वर्णन भी मिलता है। यह परम्परापुराणों के अंतर्गत अपने आरम्भिक रूप में मिलती है। जिनमें राजा–महाराजाओं की व"ाावलियाँ, ऋषि–मुनियों का वर्णन आदि प्रमुख है। जिन महापुरूषों का प्रभाव लोक पर व्यापक रूप से पड़ा उन्हें ग्रन्थों में स्थान दिया गया है।इसका विकास पालि भाषा के अंतर्गत 'व"ा' साहित्य, थेरगाथा–थेरीगाथा में भीहोता दिखता। 'दीपव"ा' तो श्रीलंका के इतिहास का ऐतिहासिक दस्तावेज भी माना गया है। भिक्षु धर्मरक्षित व"ा शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार करते है –''व"ा' शब्द का अर्थ है इतिहास, अतः बुद्धव"ा का अर्थ है 'बुद्धों का इतिहास'।''[7] इन ग्रन्थों का उद्दे"य केवल नामों की सूची उपलब्ध कराना नहीं था और न ही यह राज"ाही कठपुतली बनकर रहना। थेरगाथा–थेरीगाथा बौद्ध धर्म में दीक्षित भिक्षु एवं भिक्षुणियों का परिचयात्मक ग्रन्थ है। यह परिचय घटनाओं के वर्णन के साथ आगे बढ़ता है। इन घटनाओं का उद्दे"य समाज के समक्ष उपदे"ा तथा ि"ाक्षा देना है। यह ि"ाक्षा व्यक्ति के अनुभवों के वर्णन द्वारा दी जाती है।

यह परम्परा व"ाों के क्रमबद्ध वर्णन से इतर संप्रदाय–वि"ोष में दीक्षित व्यक्तियों को भी अपने लेखन का विषय बनाती है। मध्यकाल के संदर्भ में इसे अनुभव किया जा सकता है। राज"ाही शासन विदे"ाी आक्रमणकारियों के हाथ में जा चुका था। इन परिस्थितियों में संप्रदायों की लोक में स्थापना भक्ति के प्रचार स्तम्भों का कार्य करते है। इन संप्रदायों की ि"ाष्य–प्रि"ाष्य परम्परा के क्रम में संप्रदायों का इतिहास लिखा गया। अतः व्यक्ति के वि"ोष्य होने के लिए किसी राज"ाही का संरक्षण ही आव"यक हो ऐसा नहीं लगता। जबकि पा"चात्य इतिहास–लेखन की परम्परा राज"ाही अथवा किसी संगठनात्मक व्यवस्था के अंग रहे व्यक्ति को ही इतिहास में वर्णित करती है। यूनान का प्राचीन इतिहास हेंल्लास संस्कृति के इतिहास–लेखन 'लोगोग्राफी'[8] का अनुकरण करता है। जिसकी सामान्य प्रवृत्तियों में राजतंत्र ही केन्द्र में है। यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है जो भारतीय एवं पा"चात्य इतिहास–लेखन की सीमाओं तथा इसके पीछे गतिमान चिंतन को दिखाती है। इस रूप में भारतीय इतिहास लोक से जुड़ता है।

भारत में राजव"ाों से इतरभक्त–चरित्रों का वर्णन भी रहा है। बौद्ध धर्म में थेरगाथा–थेरीगाथा, संस्कृत में भक्तसहस्त्रनाम और हिन्दी में वार्ता–साहित्य इसी परम्परा का विकासात्मक चरण है।'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास'में चरित्र–काव्य–परम्परा कास्पष्ट संकेत किया गया है।

> ''भारतीय साहित्य में भक्त–चरित्र–काव्य की परंपरा बहुत प्राचीन है। यद्यपि इस विषय से संबंधित स्वतंत्र कृतियों के प्रणयन की प्रवृत्ति प्राचीन समय में नहीं रही है, फिर भी प्रासंगिक कथाओं और आख्यानों के रूप में वैदिक और पौराणिक साहित्य से लेकर कालांतर में बौद्ध और जैन धाराओं के साहित्य तक में किसी न किसी रूप में भक्त–चरित–काव्य के बीज दृष्टिगोचर होते हैं।''[9]

यह परम्परा हिन्दी में 'वार्ता–साहित्य' के रूप में विकसित होती है। वार्ता–साहित्य की एक वि"ोषता है कि इसमें स्वतंत्र कृतियों का प्रणयन किया गया है। इस परम्परा में जगा कृत 'भक्तमाल' सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमें 64 चौपाई छंद में दो सौ भक्तों का नाम स्मरण किया गया है। अकादमिक अध्ययन में देखा जाये तो यह हिन्दी साहित्य के अंतर्गत आता है। इसका प्रमुख कारण भक्तमाल का काव्यात्मक स्वरूप एवं काव्यगत "ौली में होना है। जगा दादूपंथ में दीक्षित थे। इसीलिए कलियुग के भक्तों का वर्णन करते हुए वह दादूपंथी भक्तों का परिचयात्मक वर्णन करते है।

अकादमिक अध्ययन इतिहास का अवधारणात्मक विकास करता है। वह इतिहास–लेखन के मानदण्ड नि"चत करता है। इसीलिए वहइतिहास के रूप में वि"ाष्ट–लेखन की मांग करता है। यह मानदण्ड वार्ता–साहित्य जैसे इतिहास विषयक स्वरूपों को उनके मूल रूप में अध्ययन करने में दृष्टिगत समस्या पैदा करता है। सती"ा चन्द्र इसी पा"चात्य प्रभाव की एकपक्षीय दृष्टि के स्थान पर बहु–ध्रुवता की बात करते हुए लिखते है कि

> ''अनवरत पा"चमी नस्ल केंद्रीयतावाद, पा"चम में और उसके साथ बाकी संसार में एक झूठा द्विभाजन स्थापित करके ऐतिहासिक विकास की प्रक्रियाओं को सीमित और विकृत कर देती है।... नस्ल केंद्रीयता नहीं बल्कि बहु–ध्रुवता इतिहास का केंद्रबिन्दु होना चाहिए।''[10]

वार्ता–साहित्य के अंतर्गत इतिहास–लेखन के स्वरूप की खोज इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है। वार्ता–साहित्य में प्रस्तुत इतिहास को देखने तथा सत्य तक पहुँचने के लिए उसका स्वरूप निर्धारण पहली समस्या है। स्वरूप निर्धारण के साथ–साथ भारतीय इतिहास के अध्ययन की दृष्टि का निर्धारण पूरक प्रकिया का ही अंग है।

अध्ययन का उद्देश्य

वर्तमान युग चहुमुखी उन्नयन का युग है। वै"वीकृत व्यवस्था में दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ एक कटु सत्य के रूप में सामने आई है। अतः उन्नति की चहुमुखी विकास करने के लिए अंतर्मुखी होने की प्रवृत्ति वै"वक परिदृ"य पर परिलक्षित हुई है। इसी प्रवृत्ति का विकास राष्ट्रवाद की आंतरिक धारा के रूप में हुआ है। अपनी जड़ों को खोजने का उनके वै"ाष्ट्य का निर्धारण किया जा रहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र भी भारतीय इतिहास–लेखन से जुड़ी समस्याओं, दृष्टिगत भेदों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है।

निष्कर्ष

भारतीय परम्परा श्रुति–सम्मत परंपरा है। वेदों से लेकर आधुनिक पूर्व तक यह परम्परा विकास करती है। जबकि पा"चात्य परंपरा लेखन को आधारभूत रूप में स्वीकार करती है। मौखिकता में लेखन के समान एकरूपता, मानकता, नि"चतता आदि को खोजना असम्भव है। इतिहास नि"चत तथ्यों की मांग करता है। लेकिन इस आधार पर श्रुतियों द्वारा संयोजित इतिहास–तत्वों को दरकिनार नहीं किया जा सकता। श्रुति परम्परा पर आधारित इतिहास तथा साहित्य–"ौली में लिखित ग्रन्थों में इतिहास के तत्वों की खोज भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए आव"यक है। मध्यकालीन हिन्दी–साहित्य में वार्ता–साहित्य के अध्ययन के लिए इन प्र"नों से जुड़ने की आव"यकता है। वार्ता–साहित्य के वि"ाष्ट स्वरूप को उसके लेखन, कल्पना अथवा प्रसंगोन्मुख वर्णन के आधार पर साहित्य की सीमा में नि"चत करना सम्भव नहीं। जबकि अनुपात में साहित्यिक तत्वों के साथ इतिहास की विषयवस्तु के संचयन में पलड़ा इतिहास की विषयवस्तु की ओर झुकता है। मध्यकाल के संदर्भ में वार्ता–साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। वार्ता साहित्य इन चरित्रात्मक वर्णन द्वारा एक ओर लोक–प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्तियों को साहित्यिक सीमाओं में आबद्ध कर दीर्घजीविता प्रदान करता है। वहीं दूसरी ओर तत्कालीन सम्प्रदायिक, धार्मिक तथा वैचारिक इतिहासान्विति को प्रस्तुत करता है। वार्ता–साहित्य की यह परम्परा वर्तमान समय तक दिखाई देती है।

पाद टिप्पणी

1. *शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास–द"ान, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, प्रथम संस्करण विक्रमाब्द 2016, पृ.स. 1*
2. *ए.एल.बा"ाम, भूमिका, पाठक, वि"वंभर"ारण, भारत के प्राचीन इतिहासकार, अनुवादक प्रदीप कांत चौधरी, प्रका"ान – ग्रंथ "िल्पी, प्रथम हिन्दी संस्करण 2007, पृ.स. 9*
3. *ए.एल.बा"ाम, 'मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन,धर्म और राज्य का स्वरूप',लेख – इतिहास का विकेंद्रण, ग्रन्थ "िल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण 1999, पुनर्मुद्रण 2013, पृ.स. 8*
4. *'ऋषि', डॉ. उमा"ांकर शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2017, पृ.स. 173*
5. *'ऋषि', डॉ. उमा"ांकर शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2017, पृ.स. 173*

6. *''स वृहहतीं दि"ामनुव्य चलत्।।10।। अथर्ववेद 15.6.10*
''तमितिहास"च पुराणं च गाथा"च नारा"ंसी"चानुव्य चलन्।।11।। अथर्ववेद 15.6.11
('वह व्रात्य बृहती दि"ाा – वृद्धि की दि"ाा का लक्ष्य करके चला। उस बृहती दि"ाा में चलने वाले व्रात्य को सृष्टि–उत्पत्ति आदि का नित्य इतिहास और जगदृत्पत्ति आदि का वर्णन रूप पुराण तथा किसी का दृष्टान्तदार्ष्टान्तिरूप कथा–प्रसंग कहनारूप गाथाएँ तथा मनुष्य के प्र"ांसनीय कर्मों का कहनारूप नारा"ंसी अनुकूलता से प्राप्त हुई। इनके द्वारा ही वस्तुतः वह वेद व्याख्यान को सुन्दरता से कर पाया।')
7. *भिक्षु धर्मरक्षित, पालि साहित्य का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण – पुनर्मुद्रण संवत् 2066*
8. *(1) 'इतिहास में वस्तुवाद को प्रमखता। इसी कारण व"ाावलियों, तालिकाओं, लेखों आदि का संग्रह लोगोग्राफी में किया गया। अतः इन संग्रहों में दैविक घटनाओं, संस्मरणों से इतर भौतिकता को महत्व दिया गया। (2) इतिहास की वस्तु के प्रमुख केन्द्र राज"ाही अथवा समृद्ध जन ही रहे। (3) इन इतिहासों की रचना नगरों के इर्द–गिर्द ही हुई। (4) उपर्युक्त इतिहासों में ऐतिहासिक दृष्टि प्रेक्षित करने से इतर सूचनाओं के संकलन को प्रमुखता दी गई। (5) इतिहास का निर्माणकर्ता समूह न होकर व्यक्ति है। यह ग्रन्थ इतिहासकारों की स्वतन्त्र कृति है।'–डॉ. बुद्धप्रका"ा, इतिहास–द"ान, हिन्दी समिति, उत्तर–प्रदे"ा, द्वितीय संस्करण 1968, पृ.स. 65*
9. *सं. डॉ देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं डॉ विजयेंद्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भक्तिकाल, सगुण भक्ति), पंचम खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण संवत् 2031, पृ.स. 520*
10. *चंद्र, सती"ा, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप, लेख – इतिहास का विकेंद्रण, प्रका"ान – ग्रन्थ f"ाल्पी, प्रथम हिन्दी संस्करण 1999, पुनर्मुद्रण 2013, पृ.स. 16*